

12 शिक्षा में परम्परागत मंच-कलाएँ

वी. आर. देविका

मैं अपनी कक्षा की शुरुआत हमेशा एक कहानी से करती हूँ। कहानी किसी भी बात से बनाई जा सकती है। बात बस कक्षा की आयु को ध्यान में रखने की है। जैसे, कक्षा के रास्ते में खिड़की की चौखट पर एक छोटी मकड़ी के बारे में छोटी सी कहानी जिसमें मकड़ी मुझसे प्रश्न करती है कि मैं कक्षा में क्या करने जा रही हूँ, अपने साथ कई उत्तर लाती है। कहानी हमेशा होती ही है।

प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र के मुताबिक कहानी की रचना शिक्षण के एक तरीके के तौर पर हुई। महारत हासिल करने लायक 64 कलाओं में से एक, कहानी सुनाने की कला आपके सन्देश के लिए एक मूड तैयार करती है। नाट्यशास्त्र भी एक कहानी से प्रारम्भ होता है। जब यह संसार लालच और दुख में लिप्त था तो विद्वान लोग ब्रह्म के पास गए और उनसे कुछ ऐसा रचने को कहा जो सम्पूर्ण ज्ञान का सारतत्व सभी स्तर के लोगों तक पहुँचाए। ब्रह्म कुछ देर के लिए ध्यानमग्न हुए, नाट्यवेद या पंचमवेद की रचना की और मानवता को रचनात्मक कलाएँ प्रदान कीं। उन्होंने ज्ञानार्जन के लिए दृश्य–सहायक सामग्री का सृजन किया।

गतिविधि: क्या हम कलाओं की सूची बना सकते हैं?

'नाट्यशास्त्र' में ब्रह्म कहते हैं कि कलाओं की रचना "अज्ञानियों में अक्लमन्दी, और विद्वानों में ज्ञान पैदा करने के लिए, राजाओं के लिए मनोरंजन और दुख के मारों के लिए धैर्य प्रदान करने के लिए की गई थी। विभिन्न मनोदशाओं से भरपूर, कलाएँ आत्मा की विविध प्रबल भावनाओं से अनुप्राणित और मानवता के बेहतरीन, औसत और निम्न, हर प्रकार के कृत्यों से सम्बद्ध होती हैं, बेहतरीन सलाह तथा मनोरंजन प्रदान करती हैं और अन्य सब कुछ भी।" यह शिक्षा की भी कई परिभाषाओं में से एक परिभाषा हो सकती है। शिक्षा को उसके व्यापकतम, सामान्य अर्थ में बहुत लोगों द्वारा ऐसे साधन के तौर पर लिया जाता है जिसके माध्यम से लोगों के एक समूह के उद्देश्य और आदतें एक से दूसरी पीढ़ी तक जीवित रहते हैं, और यह आमतौर पर किसी भी ऐसे अनुभव के माध्यम से होता है जिसका आपके सोचने, महसूस करने या कुछ करने के तरीके पर प्रारम्भिक असर पड़ता है। अपने संकीर्ण, तकनीकी अर्थ में शिक्षा एक औपचारिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज जानते–बूझते हुए अपने संचित ज्ञान को स्कूलों में शिक्षा के जरिए एक से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है। कलाओं की रचना इसी मकसद से की गई थी।

मेरा कहना है कि शिक्षक अभिनेता भी होता है। एक अभिनेता की ही तरह वह औपचारिक पाठ को कक्षा में अपने शिक्षण के माध्यम से जीवन्त कर देता है। उसे भी अपना सन्देश पूरी तरह दिमाग में बैठाने के लिए चार्ट तथा गतिविधियों जैसी सहायक सामग्री का सहारा लेना पड़ता है।

अपना सन्देश पहुँचाने के लिए शिक्षक को सम्प्रेषण के अलग–अलग तरह के तौर–तरीके सीखने पड़ते हैं। परम्परागत मंच कलाएँ श्रोताओं तक अपनी बात पहुँचाने के लिए सम्प्रेषण (अभिनय) के चार तरीके अपनाती हैं:

1. **आंगिक अभिनय** हाथ–पाँव के माध्यम से अभिव्यक्त अभिनय होता है। शिक्षक को देखना होगा कि एक विचार को अभिव्यक्त करने के लिए शरीर का प्रयोग कैसे किया जा रहा है। क्या हम बिल्कुल सीधे खड़ा होते हैं? क्या हम किसी बात पर बल देने के लिए अपने हाथों को प्रयोग में लाते हैं? क्या हम अपनी भाव–भंगिमा और हरकतों से बच्चों तक यह बात पहुँचा रहे होते हैं कि हम व्यावहारिक शिक्षक हैं?

गतिविधि: क्या कोई विचार बिना बोले अभिव्यक्त किया जा सकता है? छोटे समूहों में इस पर विचार–विमर्श हो सकता है। किसी पढ़ाए चुके पाठ से कोई एक बात उठा लें और उसे समूह के तौर पर बिना बोले अभिव्यक्त करें।

2. **अहर्य अभिनय** विभिन्न भूमिकाओं में अभिनेता की वेशभूषा और मेकअप से सम्बद्ध होता है। यह वेशभूषा तथा अन्य तरह की शारीरिक सजावट के माध्यम से प्रदर्शित होता है। मैं इसे एक विचार को उदाहरणस्वरूप समझाने के लिए कक्षा में बाहर से लाई गई सहायक सामग्री के रूप में देखती हूँ।

गतिविधि: रेखाचित्र बनाने के माध्यम से या साज–सामान का प्रयोग करके एक विचार को कैसे अभिव्यक्त किया जाए? छोटे समूह की गतिविधि।

3. **वाचिक अभिनय** में भाषा के प्रयोग, आवाज के लहजे और उतार–चढ़ाव, लय और शब्दों पर बल आदि के माध्यम से नाटक की काव्यात्मक विशेषताओं को उजागर किया जाता है। अधिकतर शिक्षकों को इस बात का एहसास होता है कि उन्हें आवाज की जरूरत पड़ेगी। क्या हम शब्दों को चबाए–खाए बिना स्पष्टता के साथ बोलना सीखते हैं? क्या हम बोलने के अपने लहजे को ऐसा रखते हैं कि वह आसानी से समझ आ सके? क्या हम अपने उच्चारण पर ध्यान देते हैं?

गतिविधि: क्या हम एक ही वाक्य को अलग–अलग ढंग से बोल सकते हैं? छोटे–छोटे समूह वाक्य के अलग–अलग हिस्सों पर बल देकर, अलग–अलग भाव से बोलकर, अपने विचार रखने का अभ्यास कर सकते हैं। क्या हम पाठ में दिए गए बिन्दुओं से लोकप्रिय, थपकी–संगीत बना सकते हैं?

4. **सात्विक अभिनय** या मन–मस्तिष्क का अभिनय कलाकार की आन्तरिक समझ और उस क्षण के मूड को जीने का द्योतक है। क्या हम शिक्षक, शिक्षक के तौर पर अपनी भूमिका के सत्व या सारतत्व को समझते और महसूस करते हैं? क्या हम उसे व्यवहार में लागू करते हैं? क्या हमें इस बात पर ध्यान देने के लिए स्वयं को प्रशिक्षित नहीं करना चाहिए कि एक शिक्षक के तौर पर हम चारों ओर क्या फैला रहे हैं, प्रसारित कर रहे हैं?

गतिविधि: सचेत रहना ज्ञानार्जन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। किसी भी समस्या के लिए प्रौद्योगिकीय समाधान या वैज्ञानिक मॉडल ही को क्यों महत्त्व दिया जाता है? सांस्कृतिक ताने–बाने में एकीकृत किए जाने से पहले कुछ विचारों की पुन: खोज होना क्यों आवश्यक है? क्या विज्ञान, कला और प्रौद्योगिकी के बारे में इच्छा और कल्पना की अभिव्यक्ति के हवाले से तथा ज्ञान में लगातार वृद्धि के तौर पर विचार करना महत्त्वपूर्ण नहीं है? अल्बर्ट आइंस्टाइन ज्ञान के मुकाबले कल्पना को अधिक महत्त्व दिए जाने की बात करते थे।

मंच–कलाएँ समझ और आनन्द की तलाश में रहती हैं, रस को एक उद्देश्य के रूप में लिया जाता है। इसे पाने के लिए कलाएँ शरीर, चेहरे के भाव–भंगिमा, संगीत, लय–ताल, वार्तालाप, कहानी सुनाना आदि के माध्यम से सम्प्रेषण का काम करती हैं। रस की अवधारणा सबसे पहले भारत के प्राचीनतम नाट्यसिद्धान्त के शोधप्रबन्ध 'नाट्यशास्त्र' में प्रस्तुत की गई, और इसे हम सौन्दर्यशास्त्रीय रसास्वादन के रूप में समझ सकते हैं। मगर यह तो इसकी सतही परिभाषा है जो इसके आध्यात्मिक और दर्शनशास्त्रीय निहितार्थ के साथ न्याय नहीं करती। इसे सामान्य आनन्द या मनोरंजन से लेकर सम्पूर्ण तल्लीनता तक के अनुभव के रूप में देखा जाता है।

देशीय मंच–कलाओं के रूप

रूपों की विविधता को देखिए:

- जनजातीय मूक–अभिनय और नृत्य–नाटकों समेत परम्परागत लोक–थियेटर या ग्रामीण नाट्यरूप।
- कठपुतलियों की कला।
- मौखिक साहित्य और संगीत के विभिन्न रूप, लोकसंगीत शैलियाँ, गाथा–गीत, हरिकथा, कबिगन, कहानी सुनाना आदि।
- मेले और त्यौहार, सामाजिक सभाएँ एवं अन्य समारोह।
- लोक नृत्य

- रीतियों से सम्बद्ध प्रतीक—चिह्न, परम्परागत डिजाइन और नमूने
- ध्वनि संकेत और वाणी स्थानापन्न (वाणी के लिए प्रातिनिधिक स्वरूप)

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के लोकप्रिय गाथा—गीतों का आल्हा रूप आज भी दशकों बाद तक अपनी विषयवस्तु और रूप—स्वरूप दोनों शक्लों में जीवित है। यह जानते हुए कि इस शैली का आम लोगों के साथ कितना गहरा सम्बन्ध है, कई लोक कवियों ने देश के ग्रामीण इलाकों से सम्बोधित होने के मकसद से इसमें कई नए शब्द भी जोड़ दिए। राजनैतिक दल और विक्रय को बढ़ावा देने वाली एजेन्सियाँ भी अपना सन्देश लोगों तक पहुँचाने के लिए इन कथा—वाचकों को प्रयोग में लाती हैं। इस प्रकार आल्हा के इस्तेमाल ने उसके प्रभाव को उन सांस्कृतिक इलाकों के अलावा भी बढ़ाया है जहाँ यह परम्परागत तौर पर जीवित रह पाया है। अन्य भाषाई क्षेत्रों से भी हमें ऐसे ही अन्य उदाहरण मिलते हैं।

सम्प्रेषण के आधुनिक साधन उपलब्ध होने के बावजूद परम्परागत लोक—माध्यम अब भी जिन्दा हैं—इस तथ्य के चलते यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि शिक्षाशास्त्री उनकी वैधता को जाँचें।

जब मैंने शास्त्रीय नृत्य और उसकी निर्माण—विद्या को तथा लोक—कलाओं के विभिन्न रूपों और उनकी गतिशीलता को देखा तो मुझे लगा कि इन्हें हमने अपनी स्कूली व्यवस्था में स्थान नहीं दिया जबकि उनका स्थान वहाँ है। भरतनाट्यम, कत्थक या ओडिसी जैसे नृत्य—रूप की शिल्प—कला और विन्यासों में एक गणितीय ढाँचा नजर आता है। इन्हें ज्यामिति और भूगोल के साथ बहुत आसानी से सम्बद्ध किया जा सकता है। संगीत में भी गणित भरपूर ढंग से मौजूद है।

जरूरी है कि हम बच्चों में अचम्भे की भावना विकसित करें—परम्परागत स्वरूपों की गतिशीलता, किस प्रकार उनमें समय और स्थान की समस्याओं के समाधान किए जाते हैं, किस प्रकार वे निरन्तर समकालीन घटनाओं को महाकाव्यों के साथ सम्बद्ध करते हैं, उनका लचीलापन और किस प्रकार कपड़े के पर्दे के इस्तेमाल जैसी तकनीकें अपनी अवधारणा में अति—आधुनिक हैं।

देवरत्तम देवदन्दुभि की ताल पर नाच का एक गैर—काव्यात्मक रूप है। मैंने जब यह 1984 में देखा तो इसकी अमूर्तता ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा—इस बात ने भी, कि यह कला का एक गैर—काव्यात्मक रूप है और पुरुषों का नृत्य है। मैं इसे स्कूल में लाने और लड़कों को इसमें प्रशिक्षित किए जाने की बात से बहुत आनन्दित हुई। लड़कों को लगता है कि नृत्य तो बस लड़कियों के लिए होता है। देवदन्दुभि की तालों के ध्वनीय शब्दांश एक ऐसा मौखिक अभ्यास है जो उच्चारण और पठन के काम को आसान बना देगा। लयबद्ध सस्वर वाचन शरीर को भी एक लय और शालीनता प्रदान करता है। हमारे देश के कोने—कोने में कला के अमूर्त रूप उपलब्ध हैं। आवश्यकता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूरे दिल से इनकी व्याख्या की जाए। स्थानीय संस्कृति के साथ सेतु बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण है कि मंच—कला के स्थानीय रूपों का प्रयोग किया जाए।





लोक–थियेटर और उसके कुछ रूप

थेरुकूथु तामिलनाडु के उत्तरी क्षेत्रों में परम्परागत मंच–कला का एक लोकप्रिय रूप है। यह गाथा–गीत, संगीत–नाटक और नृत्य–नाटक का एक बहुत ही सशक्त संगम–रूप है। इसकी शुरुआत सोलहवीं सदी से मानी जाती है। इसमें अभिनीत नाटकों की विषयवस्तु आमतौर पर मिथकीय रूप–स्वरूप लिए होती है। लेकिन कहानियों को समकालीन रंग दिया जाता है।

थेरुकूथु का प्रयोग गाँव में अच्छी फसल होने पर धन्यवादस्वरूप या वर्षा के लिए प्रार्थनास्वरूप और मन्दिरों के अनुष्ठानों तथा सामाजिक जीवन के चक्रों के अनुष्ठानों में किया जाता है। रामायण और महाभारत के महाकाव्य अपने विभिन्न चरणों में रीति अनुसार चित्रित किए जाते हैं–रात को प्रदर्शन के समय गाँव के जो लोग दर्शक होते हैं, वही अब प्रतिभागी बन जाते हैं। थेरुकूथु एक ड्रामा, तमाशा, रीति या अनुष्ठान और जीवन–चक्र का एक महत्त्वपूर्ण भाग–यह सब कुछ ही है। इसमें उच्च कोटि के साहित्यिक संवाद और गीत होते हैं, और मौजूदा समयकाल को महाकाव्य के समयकाल के साथ जोड़ने वाली समकालीन अभिव्यक्ति भी होती है। इस ड्रामा और अनुष्ठान के प्रदर्शन में युगों और समय के बीच लगातार एक गति और आगे–पीछे होने की प्रक्रिया रहती है।

कूथु के और भी कई पहलू हैं–जैसे, कूथु के चरित्रों का स्वयं का परिचय करवाने का तरीका; कतियाकरण की भूमिका, जो नाटक और प्रदर्शन के विभिन्न समयकालों को जोड़ने का काम करता है; समकालीन स्थितियों के साथ समानान्तर हालात बनाना, और समय तथा स्थान के चित्रण से सम्बद्ध ड्रामा सम्बन्धित समाधान।

जब मैंने सर्वप्रथम थेरुकूथु देखा तो मैं अचम्भे में थी। कक्षा में प्रयोग के अनगिनत विचार दिमाग में आने लगे। सबसे पहला ख्याल आया कि सुबह की सभा में इतिहास और सन्दर्भ के विवरण के साथ इसका एक प्रदर्शन हो, गाँव के परिवेश और माहौल का अन्दाजा दिया जाए और फिर परदे के कपड़े का प्रयोग हो। जैसे ही कोई पात्र प्रवेश करता है, कतियाकरण उससे बार–बार प्रश्न पूछता है–इससे मेरे मन में विचार आया कि कक्षा में ऐसे ही ड्रामाई क्षण बनाए जाने चाहिए। मैंने कक्षा 7 में गर्म और ठण्डे प्रवाहों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों से कहा कि वे इनकी भूमिकाएँ निभाएँ। उन्हें हाथ से पकड़े जाने वाले पर्दे के पीछे खड़ा कर दिया गया और घोषणा करने को कहा गया कि ठण्डा प्रवाह प्रवेश करने वाला है। फिर पर्दा हटा दिया गया और प्रवाह ने बहुत ही रचनात्मक तरीके से अपना परिचय करवाया। कक्षा ने सवाल किए–तुम कैसे बनते हो? तुम आमतौर पर कहाँ रहते हो? तुम्हारे प्रभाव क्या हैं? मैंने यह तरीका ऐतिहासिक चरित्रों के लिए, किसी कविता के पात्र के लिए, 90 डिग्री के कोण के लिए, एक लम्बवत रेखा आदि के लिए भी अपनाया है।

मैंने यहाँ कुछ ही उदाहरण दिए हैं और इनसे हमें हमारे पास उपलब्ध विशाल देशीय, स्थानीय खजाने का अन्दाजा हो जाता है। कक्षा में नए विचार और तकनीकें लाने के अलावा यह खजाना जीने की एक और ही शैली को जज्ब कर पाने को सम्भव बनाता है। किसी भी अन्य चीज से बढ़कर शिक्षा ही है जिसके माध्यम से हम नौजवानों को ग्रामीण जीवन के सीधे सम्पर्क में ला सकते हैं, और उनमें परम्परागत कलाओं के लिए भावना और आदर जगा सकते हैं।

__वी.आर. देविका__ द असीमा ट्रस्ट (www.aseematrust.org) की संस्थापक और प्रबन्धक न्यासी/प्रबन्धक समिति की सदस्य हैं। यह स्कूलों के लिए परम्परागत मंच–कलाओं, शिक्षा और महात्मा गाँधी को जोड़ने वाली एक गैरलाभकारी संस्था है। देविका मंच–कलाओं और शिक्षा के लिए भावना से ओत–प्रोत, एक जानी–मानी संस्कृतिकर्मी हैं। वे चर्खा कातने, शान्ति के लिए शिक्षा और विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए सम्प्रेषण की दक्षताओं पर नियमित कार्यशालाएँ आयोजित करती हैं। उनसे vrdevika@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। __अनुवाद:__ रमणीक मोहन